न्यायमूर्ति हरबंस *सिंह राय और ए. पी. चौधरी के समक्ष*

ओमा *उपनाम* ओम प्रकाश,-याचिकाकर्ता,

बनाम

हरियाणा राज्य,-उत्तरदाता।

आपराधिक विविध 1990 का सं. *1371-एम।*

30 अक्टूबर, 1990।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1908 का 5)– धारा 227, 228 और 319 - धारा 227 और 228 और धारा 319 के तहत व्यक्तियों को *समन करने* की अदालत की शक्ति - अभिनिर्धारित किया गया, प्रावधान एक दूसरे से स्वतंत्र हैं और विभिन्न स्थितियों को *शामिल* करते हैं और अदालत को *समन करने* की शक्ति है - *समन करने* के लिए, साक्ष्य की रिकॉर्डिंग धारा 227 एवं 228 के तहत आवश्यक नहीं है जबकि धारा 319 के तहत यह आवश्यक है।

अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय के पास दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 और 228 के तहत आरोप स्तर पर कोई भी साक्ष्य दर्ज किए बिना किसी भी व्यक्ति को समन करने की शक्तियां हैं।एक बार जब सक्षम अधिकार क्षेत्र का न्यायालय, चाहे वह मजिस्ट्रेट हो या सत्र न्यायालय/अपराध का संज्ञान लेता है, तो यह न केवल अदालत की शक्तियों के अंतर्गत आता है कि वह किसी ऐसे व्यक्ति को तलब *करे जो* पर्याप्त सामग्री पर उक्त अपराध के लिए प्रथमदृष्टया दोषी प्रतीत होता है, बल्कि वास्तव में ऐसा करना उसका कर्तव्य है।

(पैरास 6 &8)

अभिनिर्धारित किया गया कि *आरोप तय होने के बाद, यदि कुछ साक्ष्य दर्ज किए जाते हैं और फिर अभियोजन पक्ष के साक्ष्यों से किसी को फंसाया जाता है और सत्र न्यायाधीश उस व्यक्ति को समन करना*

चाहता है तो वह दंड प्रक्रिया संहिता *की धारा 319 के तहत ऐसा कर सकता है। पी. सी. ये दोनों प्रावधान यानी, संहिता की धारा 227, 228 और धारा 319 दो अलग-अलग स्थितियों से* संबंधित *हैं।*

(पैरा 11)

लाल चंद और एक *अन्य* बनाम हरियाणा राज्य, 1983 सी.आर.एल. एल.जे.1394

जोगिंदर सिंह और*अन्य* बनाम पंजाब राज्य और एक अन्य
ए. आई. आर. 1979, एस. सी. 339.(अनुसरण किया गया)

इस मामले में शामिल कानून के एक महत्वपूर्ण प्रश्न के निर्णय के लिए 26 अप्रैल, 1990 को माननीय न्यायमूर्ति श्री जे.एस. सेखों द्वारा इस मामले को बड़ी पीठ को भेजा गया था। माननीय न्यायमूर्ति श्री हरबंस सिंह राय और माननीय न्यायमूर्ति श्री ए.पी. चौधरी की खंडपीठ ने 30 अक्टूबर, 1990 को इस मामले में शामिल कानून के प्रश्न का फैसला किया और मामले को योग्यता के आधार पर निर्णय के लिए विद्वान एकल न्यायाधीश को वापस भेज दिया। *पक्षकारों* को 26 जनवरी, 1990 को विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया गया।

आपराधिक दुराचार, धारा 482 जी.आर.एल के तहत। पी. सी. ने प्रार्थना की- कि विद्वान सत्र न्यायाधीश जीन्द के दिनांक 8 फरवरी, 1990 के विवादित आदेश को रद्द कर दिया जाए।

आगे प्रार्थना की गई है कि याचिका के निपटारे तक याचिकाकर्ता के खिलाफ मुकदमे की आगे की कार्यवाही पर रोक लगाई जाए। एफआईआर नंबर 151 दिनांक 28 जून, 1989, धारा 148/149, आई.पी.सी के तहत। पी,एस. सदर,जीन्द।

याचिकाकर्ता की ओर से एच.एस. गिल अधिवक्ता। राज्य की ओर से रघबीर चौधरी, अधिवक्ता।

शिकायतकर्ता की ओर से अधिवक्ता *आर. एस. चीमा।*

न्याय

हरबंस सिंह राय, जे.

(1) जे. एस; सेखों, जे. ने अपने आदेश दिनांक 26 अप्रैल, 1990 के माध्यम से यह संदर्भ दिया है क्योंकि विद्वान न्यायाधीश के अनुसार, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 और 228 के प्रावधानों के बीच विरोधाभास है (जिसे इसके बाद संहिता के रूप में संदर्भित किया गया है) जैसा कि लाल चंद और अन्य बनाम हरियाणा राज्य (1) में इस न्यायालय की *एक खण्ड* पीठ द्वारा व्याख्या की गई थी, और संहिता की धारा 319 के प्रावधान, जैसा कि उच्चतम *न्यायालय द्वारा* "जोगिंदर सिंह और एक अन्य बनाम *पंजाब राज्य* और अन्य" में व्याख्या की गई थी। विद्वान न्यायाधीश ने संदर्भ में आगे कहा है कि "मिथलेश कुमारी बनाम हरियाणा राज्य" (3) मामले में इस न्यायालय की एकल पीठ ने यह भी अभिनिर्धारित किया था कि अतिरिक्त अभियुक्तों के खिलाफ अपराध का संज्ञान निचली अदालत द्वारा कुछ साक्ष्य दर्ज करने के बाद ही लिया जा सकता है। चूंकि कुछ विरोधाभास है, इसलिए जे.एस. सेखों, जे. ने मामले को एक बड़ी पीठ को भेज दिया है।

(2) हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और इसमें शामिल कानून के मुद्दे पर सावधानीपूर्वक विचार किया है।

(3) हमारे विचार से, इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा लिए गए दृष्टिकोण और जोगिंदर सिंह के मामले (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण के बीच *कोई* विरोधाभास नहीं है।इस निष्कर्ष पर पहुंचने के हमारे कारण इस प्रकार हैंः–

(4) लाल चंद के मामले में घटना 27 अगस्त 1980 को सुबह 8.30

बजे ट्रक यूनियन, सोनीपत के कार्यालय में हुई। पुलिस द्वारा पार्टियों के खिलाफ क्रॉस कैफ़े दर्ज किए गए थे। निम्न में से एक, अपराध के शिकार राम कुमार की हालाँकि 2 सितंबर, 1980 को मृत्यु हो गई और इसके परिणामस्वरूप अपराध को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत अपराध को अपराध में परिवर्तित कर दिया गया। जांच के बाद पुलिस ने छह आरोपियों का उक्त अपराध में चालान कर दिया। ट्रक यूनियन के अध्यक्ष लाल चंद को निर्दोष पाया गया, और जांच एजेंसी द्वारा उन्हें निर्दोष पाए जाने का आधार यह था कि वह घटना के समय चिरंजीत लाल नामक एक व्यक्ति के आवेदन के सिलसिले में पुलिस स्टेशन में थे। दोषी मजिस्ट्रेट ने पुलिस द्वारा चालान किए गए उपरोक्त छह अभियुक्तों को सुनवाई के लिए सत्र न्यायालय को सौंप दिया, लेकिन जांच एजेंसी के निष्कर्षों के आधार पर लाल चंद को दोषी नहीं ठहराया।सत्र न्यायालय के समक्ष, भरत सिंह शिकायतकर्ता ने अन्य सह-अभियुक्तों के साथ मामले में अपने मुकदमे चलाने के लिए लाल चंद को भी एक आरोपी व्यक्ति के रूप में बुलाने के लिए एक आवेदन दिया। विद्वान अतिरिक्त सत्र *न्यायाधीश* सोनीपत ने 6 अगस्त, 1981 के अपने आदेश में लाल चंद को अन्य सह-अभियुक्तों के साथ कठघरे में खड़ा करने के लिए मामले में एक आरोपी के रूप में तलब किया।विद्वत अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि चूंकि सभी घायल चश्मदीद गवाहों ने कथित अपराध के लिए लाल चंद को शामिल करते हुए पुलिस के *समक्ष स्पष्ट* रूप से बयान दिए थे, इसलिए उनके खिलाफ एक प्रथम दृष्टया *मामला* स्पष्ट रूप से बनाया गया था और उनके द्वारा बहाना याचिका निर्णायक रूप से उन्हें आरोप से मुक्त नहीं कर सकती थी।विद्वत अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने अपने फैसले में आगे कहा कि भले ही संहिता की धारा 319 के प्रावधानों को आकर्षित नहीं किया गया था, फिर भी उनके पास संहिता की धारा 227

और 228 के तहत लाल चंद याचिकाकर्ता के खिलाफ समन भेजने और आरोप तय करने की शक्ति थी।फैसले में विशेष रूप से उल्लेख किया गया था कि विवाद में शामिल होना पूरी तरह से अनावश्यक था।निर्णय के पैरा संख्या 12 में इसका उल्लेख निम्नानुसार किया गया थाः–

> "उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि इस मुद्दे पर न्यायिक राय का कुछ विरोधाभास है।हालाँकि, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि मैंने खुद को मुख्य रूप से संहिता की धारा 227 और 228 के प्रावधानों पर अपना ध्यान केंद्रित किया है, संहिता की धारा 319 के तहत इस विवाद में शामिल होना पूरी तरह से अनावश्यक है।इसलिए, मैं इस विशिष्ट बिंदु पर कोई भी राय व्यक्त करने से बचूंगा।"

(5) इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा लाल चंद के मामले में लिया गया विचार यह है कि सत्र न्यायालय में दो शक्तियां निहित हैं जो उसे दो अलग-अलग स्थितियों से निपटने का अधिकार देती हैं। यदि किसी व्यक्ति का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट और अन्य प्रासंगिक दस्तावेजों में है और यदि पुलिस द्वारा उसका चालान नहीं किया गया है तो उसे कमिटिंग मजिस्ट्रेट द्वारा बुलाया जा सकता है। यदि कमिटिंग मजिस्ट्रेट उसे समन नहीं करता है तो सत्र न्यायालय आरोप तय करने से पहले उसे समन कर सकता है। दूसरी स्थिति तब होती है जब आरोप तय होने के बाद, कुछ ऐसे साक्ष्य दर्ज किए जाते हैं जो किसी ऐसे व्यक्ति पर आरोप लगाते हैं जो अदालत के समक्ष नहीं है, तो अदालत उस व्यक्ति को सीआरपीसी की धारा 319 के तहत तलब कर सकती है । खण्ड पीठ ने आगे कहा कि पहली स्थिति में समन करने के लिए यानी संहिता की धारा 227 और 228 के तहत कोई सबूत दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है और अदालत निश्चित रूप से

किसी व्यक्ति को प्रथम सूचना रिपोर्ट, संहिता की धारा 161 के तहत दर्ज बयानों और जांच के दौरान एकत्र किए गए अन्य कागजातों के अवलोकन के बाद तलब कर सकती है और यदि संतुष्ट हो तो उसके खिलाफ आरोप तय कर सकती है।इस समन का संहिता की धारा 319 के तहत शक्तियों से कोई लेना-देना नहीं है और यह संहिता की धारा 319 से स्वतंत्र है।दूसरी स्थिति तब उत्पन्न होती है जब निचली अदालत द्वारा दर्ज साक्ष्य में किसी व्यक्ति का नाम लिया जाता है।निचली अदालत संहिता की धारा 319 के तहत उसे समन करने में सक्षम है क्योंकि उसके खिलाफ कुछ सबूत सामने आए हैं।

(6) लाल चंद के मामले में, निर्णय लिखने वाले मुख्य न्यायाधीश एस.एस. संधावालिया ने पुरानी और नई संहिता की धारा 193 के तहत शक्तियों, नए संहिता की धारा 239 और 240 के तहत शक्तियों और वर्तमान संहिता की धारा 227 और 228 के प्रावधानों का उल्लेख किया था और इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए विस्तृत कारण दिए कि अदालत के पास धारा 227 और 228 के तहत किसी भी व्यक्ति को आरोप चरण में कोई सबूत दर्ज किए बिना तलब करने की शक्तियां हैं। खण्ड पीठ के विचार को "सूरत सिंह बनाम पंजाब राज्य" (4) में रिपोर्ट किए गए इस *अदालत की* खण्ड *पीठ के* पहले *के* एक फैसले से मजबूत किया गया था, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि संहिता की धारा 173 के तहत अंतिम रिपोर्ट के आधार पर कमिटिंग मजिस्ट्रेट को पुलिस के निष्कर्षों से भिन्न होने का अधिकार क्षेत्र है और निर्देश दिया गया है कि जिस आरोपी व्यक्ति को मुकदमे के लिए नहीं भेजा गया है और जिसका कॉलम संख्या 2 में उल्लेख किया गया है, उसे भी समन किया जाना चाहिए और धारा 209 के तहत सत्र न्यायालय में भेजा जाना चाहिए। सूरत सिंह के मामले में *खण्ड पीठ* द्वारा लिया गया दृष्टिकोण "हरेराम सत्पथी बनाम टीकाराम अग्रवाल"

(5) में सुप्रीम कोर्ट के दृष्टिकोण पर आधारित था।

(7) लाल चंद के मामले में, खण्ड पीठ ने आगे कहा कि "अमर सिंह बनाम पंजाब राज्य", आपराधिक मामले में के.एस. तिवाना, जे. 1977 के क्रमांक 4220 एम में 18 नवंबर 1977 को फैसला सुनाया गया था: -

> “नई संहिता के तहत, निर्वहन की शक्ति जो पहले मजिस्ट्रेट द्वारा प्रयोग की जाती थी, अब नए कोड की धारा 227 के तहत सत्र न्यायाधीश द्वारा प्रयोग की जाती है। यह इस स्तर पर है कि सत्र न्यायाधीश आरोपी के खिलाफ आरोप तय करने के लिए नई संहिता की धारा 173, 227 और 228 में उल्लिखित रिकॉर्ड और दस्तावेजों पर अपने सचेत दिमाग को लागू करता है क्योंकि उसे नई संहिता द्वारा 'मामले' को स्वीकार करने की शक्ति दी जाती है। नई संहिता की धारा 209 के कारण अब इस शक्ति का प्रयोग मजिस्ट्रेट द्वारा नहीं किया जा सकता है। यदि सत्र न्यायाधीश को यह शक्ति देने से इनकार कर दिया जाता है, तो इससे न्यायालयों के स्थान पर स्वयं दोषियों के अपराध या निर्दोषता का निर्धारण करने में जांच एजेंसी को बेलगाम शक्तियां मिलने की संभावना है। यदि गलत या अनावश्यक कारणों से किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति को जांच एजेंसी द्वारा छोड़ दिया जाता है, तो उसके खिलाफ कोई उपाय नहीं होगा। यदि पीड़ित पक्ष द्वारा दायर शिकायत को छोड़कर याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री अजमेर सिंह का तर्क स्वीकार किया जाता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, परिस्थितियाँ ऐसी हो सकती हैं जिनमें शिकायत दर्ज करने के लिए कोई शिकायतकर्ता नहीं हो सकता है, या यदि कोई है, तो वह अदालत में जाना पसंद नहीं करेगा। ऐसी प्रतिबंधित व्याख्या जैसा

कि 1977 सीआरएल में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा की गयी है। एल.जे. 415, को सत्र न्यायालय में नहीं रखा जा सकता। नई संहिता न्यायालयों को 'मामलों' के संज्ञान का अधिकार देता है न कि किसी व्यक्ति के विरुद्ध संज्ञान का। किसी भी व्यक्ति को किसी मामले में आरोपी के रूप में समन करने की शक्ति विशेष रूप से न्यायालय को नहीं दी गई है, लेकिन यह किसी अपराध से जुड़े मामलों के संज्ञान से आती है।

पूर्वनिर्धारित कारणों से, विद्वान न्यायाधीश द्वारा पटानंचला चीन लिंगैया की सहजता (1977 *क्रि. एल. जे. 415)* (अंध प्रा) (ऊपर) मैं उस मामले में आए निष्कर्षों को प्रतिग्रहण करने में असमर्थ हूं।एक सत्र न्यायाधीश, अपने न्यायालय में किए गए मामले में, जांच एजेंसी द्वारा अपराध के आरोपी किसी भी व्यक्ति को समन कर सकता है, जिसके खिलाफ, उसके विचार में, कार्रवाई करने के लिए पर्याप्त सामग्री है।"

खण्ड पीठ ने आगे "रघुबंस दुबे बनाम बिहार राज्य" (6) पर भरोसा किया, जहां यह कहा गया था: -

"हमारी राय में एक बार मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान ले लेने के बाद, वह किसी अपराध का संज्ञान लेता है, न कि अपराधियों का। एक बार जब वह किसी अपराध का संज्ञान ले लेता है तो यह उसका कर्तव्य है कि वह यह पता लगाए कि अपराधी वास्तव में कौन हैं और एक बार जब वह इस निष्कर्ष पर पहुंच जाता है कि पुलिस द्वारा भेजे गए व्यक्तियों के अलावा कुछ अन्य व्यक्ति भी शामिल हैं, तो उन व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही करना उसका कर्तव्य है। अतिरिक्त अभियुक्त को तलब करना किसी अपराध का संज्ञान लेने से शुरू की गई कार्यवाही का हिस्सा है।

(8) इन सभी मामलों को ध्यान में रखते हुए, लाल चंद *के मामले* में न्यायाधीशों ने अभिनिर्धारित किया कि उपरोक्त से, यह अपरिवर्तनीय रूप से इस प्रकार है कि एक बार सक्षम क्षेत्राधिकार वाला न्यायालय, चाहे वह मजिस्ट्रेट हो या सत्र न्यायालय, अपराध का संज्ञान लेता है, यह न केवल किसी ऐसे व्यक्ति को समन करने की अदालत की शक्तियों के भीतर है जो पर्याप्त सामग्री पर उसे उक्त अपराध के लिए प्रथम दृष्टया दोषी प्रतीत होता है, बल्कि वास्तव में ऐसा करना उसका कर्तव्य है।

(9) लाल चंद के मामले में इस न्यायालय द्वारा कई अन्य मामलों में भी विचार किया गया था। "रणधीर सिंह बनाम काला सिंह और अन्य" (7) में, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कमल द्वारा संहिता की धारा 395 (2) के तहत एक संदर्भ दिया गया था। पूछे गए प्रश्नों में से एक यह था कि क्या किसी अपराध का आरोपी व्यक्ति, जिसका पुलिस द्वारा चालान नहीं किया गया था और जिसके परिणामस्वरूप सत्र न्यायालय में सुनवाई के लिए प्रतिबद्ध नहीं किया गया था, को सत्र न्यायाधीश द्वारा तलब किया जा सकता है और मुकदमे में अन्य सह-अभियुक्तों के साथ आरोपी के रूप में शामिल किया जा सकता है। के.एस. तिवाना, जे. ने इस स्थिति से निपटने के दौरान कहा था कि यह प्रश्न दो चरणों में उठेगा। पहला चरण वह है जब प्रतिबद्धता के बाद मामला सत्र न्यायालय के समक्ष आरोप पर विचार के लिए आता है। पुरानी संहिता के तहत मजिस्ट्रेट धारा 190 के तहत अपराध का संज्ञान लेते हुए ऐसे व्यक्तियों को आरोपी के रूप में तलब कर सकता है, जिनके खिलाफ पुलिस द्वारा आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया था। नई संहिता लागू होने के बाद, यह कर्तव्य अब संहिता की धारा 227 और 228 के तहत सत्र न्यायाधीश द्वारा किया जाएगा।

(10) इस न्यायालय ने "दान सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य" (8), 1989(2) में इस प्रस्ताव पर फिर से विचार किया, जिसमें यह कहा गया थाः- -

"यह उस स्तर पर है, कि न्यायालय, यानी प्रतिबद्धता से पहले मजिस्ट्रेट, और प्रतिबद्धता के बाद सत्र न्यायाधीश पहली बार जांच के दौरान एकत्र किए गए दस्तावेजों और सामग्री पर अपना दिमाग लगाता है। यदि विवेकपूर्ण प्रयोग के परिणामस्वरूप, सत्र न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जांच एजेंसी के अभिलेख में नामित अन्य व्यक्ति भी हैं जिन्हें मुकदमे के लिए नहीं भेजा गया है और यह पता चलता है कि रिकॉर्ड पर यह इंगित करने के लिए सामग्री है कि ऐसे व्यक्तियों के खिलाफ आरोप अच्छी तरह से स्थापित है, तो उसके लिए ऐसे व्यक्तियों को आरोपी के साथ शामिल होने के लिए बुलाने के लिए वह स्वतंत्र है, जिनका पुलिस द्वारा चालान नहीं किया गया है, दूसरे चरण में मुकदमा चलाया जा सकता है। हालाँकि, सत्र न्यायाधीश द्वारा सम्मन के लिए सीआरपीसी की धारा 319 के तहत आरोप तय करने के बाद उत्पन्न होता है। यानी अभियोजन पक्ष के लिए साक्ष्य दर्ज करने के बाद"।

(11) यह न्यायालय लगातार यह विचार रखता रहा है कि यदि जांच एजेंसी द्वारा चालान नहीं किए गए किसी व्यक्ति का नाम पुलिस के दस्तावेजों में है, तो मजिस्ट्रेट प्रतिबद्धता से पहले और सत्र न्यायाधीश आरोप तय करने से पहले उसे समन करने और बिना कोई सबूत दर्ज किए मुकदमे में शामिल होने का निर्देश देने के लिए सक्षम है।इन शक्तियों का प्रयोग मजिस्ट्रेट द्वारा संहिता की धारा 209 के तहत और सत्र न्यायाधीश द्वारा संहिता की धारा 227 और 228 के तहत किया जाता है।संहिता की धारा 319 इस स्तर पर सामने नहीं

आई है, लेकिन यदि आरोप तय होने के बाद, यदि कुछ साक्ष्य दर्ज किया जाता है और फिर अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में साक्ष्य द्वारा किसी को फंसाया जाता है और सत्र न्यायाधीश उस व्यक्ति को समन करना चाहता है तो वह सीआरपीसी की धारा 319 के तहत ऐसा कर सकता है। ये दोनों प्रावधान यानी संहिता की धारा 227,228 और धारा 319 दो अलग-अलग स्थितियों से संबंधित हैं।

(12) चूंकि लाल चंद का मामला धारा 319 सीआरपीसी के तहत प्रावधान से संबंधित नहीं था और उच्चतम न्यायालय ने संहिता की धारा 227 और 228 के तहत शक्तियों पर विचार नहीं किया, बल्कि संहिता की धारा 319 के तहत शक्तियों पर विचार किया, इसलिए इस न्यायालय और उच्चतम न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण में कोई विरोधाभास नहीं है। याचिकाकर्ता की ओर से पेश अधिवक्ता श्री एच.एस. गिल भी इस न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण के बीच कोई विरोधाभास नहीं बता सके और लगभग स्वीकार कर लिया कि लाल चंद का मामला और जोगिंदर सिंह का मामला दो अलग-अलग स्थितियों और कानून के दो अलग-अलग प्रावधानों से संबंधित है।

(13) चूंकि हमें लाल चंद के मामले में इस अदालत द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण और जोगिंदर सिंह के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण में कोई विरोधाभास नहीं मिला, इसलिए संदर्भ वापस कर दिया गया है। पक्षों को 26 नवंबर, 1990 को विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है।

आरएनआर

Oma ata Om Parkash TOe State ot Haryana (Harbans Singh'
Kai, JJ

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

कोमल दहिया

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

फ़रीदाबाद, हरियाणा